संतवाणी

प
द्य
म
य



वे
दा
न्त
*

प. पू. संत श्री आशारामजी महाराज

श्री योग वेदान्त सेवा समिति मोटेरा, साबरमती

प्रथम आव्रुत्ति : १९७७

श्री रक्षाबन्धन महोत्सव

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान :
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आशाराम आश्रम
मोटेरा गाँव (जि. गांधीनगर)
गुजरात

मुद्रक : रतिलाल अंबालाल पटेल,
अक्षर प्रेस,
११, आशिष इन्ड. अेस्टेट,
नागरवेल हनुमान रोड,
रखियाल, अहमदाबाद–२३.

SANT VANI (POETIC VEDANT)

सादर समर्पित

पूज्य पिता स्व.श्री कृपालदासजी की पुण्य स्मृति में

चन्दीराम

दयालदास, नारायणदास लधाराम
एवं अन्य परिवार

निवेदन

संत महापुरूषों की वाणी पाठ करने मात्र से आनन्दोपलब्धि होती है, क्योंकि वह श्रुति–स्मृति–सदाचार सम्मत होती है।

संत महापुरुषों के मुखारविन्द से निकली ऐसी वाणी का दिव्य पाठ करने से जीवन में आई हुई उदासीनता भाग जाती है और जिज्ञासुओं को अनुपम लाभ होता है। साधना पथ पर अडिगता, जीवन में त्याग–वैराग्य और ब्रह्मानन्द की मस्ती सहज प्राप्त हो उस हेतु से प्राप्त हुई यह वाणी **श्री योग वेदान्त सेवा समिति** प्रकाशित करा रही है।

卐

ॐ

मेरा प्रिय निवेदन

प्रिय पाठकों,

एकमेवाक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्वा चाऽनृणी भवेत्॥

अर्थात्

"गुरु अपने शिष्य को जो एक अक्षर का ज्ञान देता है, उसका बदला देने योग्य इस पृथ्वी पर कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि जिसे देकर शिष्य बदला चुका सके।"

वह मेरे जीवन का परम सौभाग्यशाली दिन था जिस दिन मुझे पूज्यश्री का प्रथम पावन दर्शन प्राप्त हुआ था।

ओह! यह क्या हुआ! मैं तो देखता ही रहा उस भव्य मूर्ति को। योग शक्ति पूर्ण विशाल नेत्र, ऊँचा चौड़ा मस्तक, मुखमण्डल पर एक विशेष प्रकार की आध्यात्मिक चमक एवं चेहरे पर विराजमान मधुर मुस्कान—ऐसे महापुरुष के तो मुझे आज तक कहीं दर्शन ही नहीं हुए थे जिनका प्रथम दर्शन ही मेरे हृदय को इतना प्रेमपूर्ण आकर्षण दे सके!

इससे भी अधिक आश्चर्य तो तब हुआ जब उन्होंने मुझे देखते ही कहा कि 'अब लौकिक शादी में क्यों फँसते हो? मैं तुम्हारी शादी उससे (भगवान से) कराऊंगा।'

तो ये मेरे मन की बात भी जान गए हैं कि यह क्यों आया है यहाँ! न तो मैं इनको पहले से जानता हूँ, न ये मुझे जानते हैं और न ही कभी इनको मैंने पहले देखा है!

उन दिनों मैं बड़े काम–विकार से पीड़ित था। लेकिन इस समय वह विकार कहाँ चला गया और कैसे चला गया यह भी मैं नहीं समझ सका। अभी–अभी घर पर १८ वर्ष की लड़की को (होनेवाली पत्नी को) छोड़ कर आया हूँ–केवल ऐसे ही यह पूछने के लिये कि स्वामी लीलाशाहजी महाराज आजकल कहाँ विराज रहे हैं। मगर यहाँ पूज्यश्री के दर्शन हुए और इस दर्शन ने तो मेरी सारी परिस्थिति ही बदल दी।

मैं तो शीघ्रातिशीघ्र शादी के लिये इच्छुक था।

मेरी उम्र ५१ वर्ष और उसकी १८ वर्ष मात्र! यह भी कोई मेल है! लेकिन हो रहा था। क्योंकि पहले मेरी एक–एक कर के दो शादियाँ हो चुकी थी और दोनों पत्नियाँ एक-एक करके स्वर्गस्थ हो चुकी थी। मगर मैं पत्नी के बिना एक रात भी नहीं रह सकता था–इतना कामी मैं था! इसलिये हजारों रुपये खर्च करके बहुत खोज के बाद यह लड़की मिली थी। वह शादीकी सब शर्तें भी मान चुकी थी।

ओह ! उससे शादी हो जाती तो आज मैं कहाँ होता ! मेरा मोटा, कफ–युक्त दमा की बिमारी से घिरा हुआ अशक्त शरीर, वृद्धावस्था की ओर बढ़ते मेरे कदम, पुराना कब्ज, धूप सहन करने में अशक्त इतना कि बिना छाते के दुकान से नीचे पैर नहीं रखता था–और फिर भी मैं तीसरी शादी कर रहा था ! यदि यह हो चुकी होती तो आज कितनी घर में अशांति होती ! पहले के बच्चों एवं नई माता के आपसी झगड़े ओर उन्हीं उलझे में हुए मैं जीता–ओह ! ......और मेरा परमार्थ का क्या होता ! आज भी यह विचार मेरे ह्रदय को कंपा देता है ।

उन महापुरुष को प्रणाम करके मैं घर लौटा, मगर अब मैं पहले वाला चन्दीराम नहीं था । अब मैं बदल चुका था । मैंने तय कर लिया था कि यह शादी नहीं होगी । मगर घर पर भाईयों ने कहा कि तुम

अपनी और हमारी सारी मेहनत पर पानी फेर रहे हो । यह ठीक नहीं है । फिर ऐसा विवाह के लिये मौका नहीं मिलेगा ।

उनके आश्चर्य का तो यह जानकर पार ही नहीं रहा कि जो इतना शादी के लिये उतावला हो रहा था वह एकदम कैसे बदल गया ! यह कहाँ जाकर लौटकर आया है ! ओर लौटा है तो वही नहीं रहा है, कुछ और ही बनकर लौटा है ।

तीन–चार वर्ष तक भाईयों–रिश्तेदारों मित्रों आदि सबकी मेहनत लगी थी ईस कार्यमें । दलालों में भी पानी की तरह पैसा बहाकर मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश आदि प्रांतों एवं गुजरात के कच्छ, बडौदा आदि छोटे बड़े कई स्थानों में घूम घूम कर जिस लड़की को ढूँढ कर यह रिश्ता होने वाला था, और लगभग हो ही चुका था—यह सब किया कराया क्या व्यर्थ चला जाएगा ! भाईयोंने मुझे समझाने का एक बार फिर प्रयत्न

किया। इतना होने से मैंने भी विचार किया कि मैं अपना पुराना विचार फिर जाग्रत करुँ और लड़की एवं उसकी माता से फिर बात करुँ।

ऐसा सोचकर मैंने कदम आगे बढ़ाया।

और यह मेरे लिये तीसरा महत्त्वपूर्ण अनुभव था जो जिन्दगी में मुझे कभी नहीं हुआ था और भाग्य से ही किसी को इस पृथ्वी पर होता होगा-ऐसा कहूँ तो इसमें अतिशयोक्ति नहीं होगी।

वह दृश्य मुझे आज भी याद है।

हम दोनों—वह लडकी और मैं, केवल हम ही दोनों—एक बन्द कमरे में रहे। यह पेट्रोल और अग्नि का संयोग था। आग भड़कनी ही चाहिये थी, क्योंकि आज तक मेरे जीवन में भड़कती रही थी। मगर यह क्या......! मैंने उसे स्पर्श किया, कुछ अन्य काम–विकार

युक्त हरकतें की काम–विकार को जगाने का खूब प्रयत्न किया, मगर मैंने अपने अन्दर देखा तो पाया-विकार ही मेरे में नहीं उठ रहा है। मैंने बहुत कोशिश की कि विकार उठे और वह आनन्द— मगर विकार ही नहीं उठा। अरे, मैं इतना कामी था फिर आज यह क्या हुआ !...ओह ! यह अनुभव तो ऋषियों के लिये भी दुर्लभ रहा है–कई बार ! एकान्त में एक पूर्ण यौवन प्राप्त कुमारी युवती को सामने पाकर उससे स्पर्श आदि हो और विकार न उठे !....यह हुआ कैसे ! घण्टा भर मैंने प्रयास किया कि विकार उठे, मगर नहीं उठा। तुरंत ख्याल आया–यह उन महापुरुष की कृपा का ही फल दिखता है। वे मनुष्य वेश में भगवान ही लगे मुझे। उनको यदि मैंने छोड़ दिया तो आगे मेरा क्या होगा...! नहीं SSS अब तो भले

कितनी ही रुकावटें आवें, भाईयों का कितना ही विरोध हो, मैं उनकी छत्रछाया नहीं छोड़ूँगा। वस ! मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया। अव मुझे यह विषयों का संसार नहीं चाहिये। यह लौकिक सुख अव मुझे नहीं लुभा सकेगा। अव तो वे महापुरुष ही मेरी नाव के खेवैया वनेंगे।

मैंने निश्चय किया—और उस लड़की को वहन भाव से देखा, उससे क्षमा मांगी, कुछ रुपये उसको मार्ग व्यय आदि के लिये दिये और...चल पड़ा...अपने परमार्थ के लिये उन्ही महापुरुष के मार्ग-दर्शन में।

करीब ५ वर्ष हो गए इस घटना को घटे। वह मेरे जीवन का स्वर्णिम दिन था कि जिस दिन उन महापुरुष का प्रथम दर्शन मेरे पुण्योदय स्वरूप हुआ था। '**श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ योगीराज संतश्री आशा-**

रामजी महाराज' इस नाम से वही पूज्य महापुरुष आज प्रसिद्ध हैं। इस मोटरा आश्रम में आज भी मेरे जैसे कई भूले–भटके साधक लोग उनसे दिव्य पावन प्रेरणा लेकर अपने जीवन को धन्य वना रहे हैं।

अभी मैं पूज्यश्री के चरणों में ही रहता हूँ। मुझे पूज्यश्री ने नेती, धोती, आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि कई यौगिक विधियाँ भी अल्प-काल में ही सिखा दी थी। योग में मुझे क्या क्या ऊँची भूमिका के अनुभव होते हैं वे तो मैं विना गुरु आज्ञा के नहीं वता सकता, मगर उन्हीं के श्री मुख से मेरे वारे में सुनी हुई वात कह सकता हूँ।

एकवार स्वामीजी एक मिनिस्टर को आश्रम में वता रहे थे "ये जो सफेद दाढी वाला सन्त आप देख रहे हैं न, इसका ४ वर्ष पूर्व का सेठ वेशमें फोट्र आप देखें, तो आप विश्वास नहीं करेंगे कि यही वह

है। उस समय इनका बड़ा बेड़ोल, मोटा, कफ भरा हुआ शरीर था। मगर यौगिक साधना करने से आज इतना हल्का और स्फूर्तिवान हुआ है कि दौड़ने में ये अच्छे अच्छे जवानों का साथ देते है। ४–५ वर्ष में हो योग द्वारा साधक की ऐसी भूमिका इन्होंने हासिल की है कि दूर दूर तक इस भूमिका का साधक आपको कोई विरला ही मिले। जिस भूमिका पर पहुँचने के लिये वर्षों पहाड़ों की गुफाओं में तपस्या करनी पड़ती है, वह भूमिका इसने अपनी श्रद्धा एवं प्रयत्नों द्वारा हासिल की है।"

आज तो सदैव स्वामीजी के निकट सान्निध्य में मैं देखता हूँ कि कई नये एवं कई पुराने–पुराने वर्षों पूर्व साधना में लगे हुए, मगर फिर भी निराश साधक हर-हमेश यहाँ आकर 'पूज्यश्री' से प्रेरणा एवं मार्गदर्शन लेते हैं। उन साधकों की इधर–उधर गुरु प्राप्ति हेतु

कष्टपूर्ण भटकने की और फिर भी उपयुक्त फल न मिलने की निराशापूर्ण कथाएं जब मैं सुनता हूँ, तो अपने भाग्य को सराहते हुए सोचता हूँ कि **'आह ! मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि मुझे पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य के लिये इतना नहीं भटकना पड़ा।**

मुझ पर पूज्य गुरुदेव की अपार कृपा का एक उदाहरण बताता हूँ। एक बार किसी कार्यवश मुझे अपने गाँव जाना पड़ा था। वहाँ मुझे भी पता नहीं लगा और पुराने मोह का जागरण हो गया। मैं उधर ही खो गया। यानी मुझे पता ही नहीं लगा कि इधर मेरा पतन शुरू हो गया है। उन्ही दिनों एक बार मैं सुबह ही सुबह एकान्त सड़क पर घूमने निकला था, तो वहाँ क्या देखता हूँ कि पूज्य गुरुदेव मेरे से कुछ कदम आगे चले जा रहे हैं। मैंने दौड़कर उनके चरण-स्पर्श करना चाहा, मगर इतने में तो वे अन्तर्धान हो गए। बस ! मैं

संकेत समझ गया और दो ही दिन में वह स्थान छोड़कर आश्रम में पूज्यश्री के चरणों में पुनः आ गया।

यह तो मुझे बाद में पता चला कि मेरा कितना पतन होनेवाला था और पूज्यश्रीने मुझे समय पर बचा लिया! अेसे कई प्रसङ्ग मेरे जीवन में आए हैं। मुझ पर पूज्यश्री की अपार कृपा है।

उन्हीं की प्रेरणा से सन्तों की वाणीरूपी यह पुस्तिका मेरे पूज्य स्व. पिताश्री की याद में छपवाकर श्री योग वेदान्त सेवा समिति को समर्पित कर रहा हूँ।

ॐ ॐ ॐ

— चन्दीराम

શ્રી ગુરુદેવનાં ચરણોં



१

संध्यादि जितने कर्म हैं सब ही नियम से पाल रे।
उत्साह से अनुराग से मन दोष सारे टाल रे॥
जो कर्म पातक रूप हैं मत चित्त से भी कर कभी।
जो जो करे तू कर्म निशि दिन शुद्ध मन से कर सभी॥

२

है प्रेम पूरा कर्म में परिपूर्ण मन उत्साह है।
तन मन लगाकर कर्म कर, फल की कभी न्हीं चाह है॥
चातुर्यता से कर्म कर, मत लेश भी अभिमान कर।
सब कर्म भगवत् हेतु कर विश्वेश पूजन मानकर॥

३

चौथे पहर में रात के जब पूर्ण ब्रह्ममुहूर्त हो।
दे त्याग निद्रा प्रथम ही, मत नींद में अनुरक्त हो॥
विश्वेश से कर प्रार्थना, निज भक्ति देने के लिये।
विश्वेश का मन ध्यान कर, कल्याण अपने के लिये॥

४

जप नाम भगवत् भाव प्रिय का, भाव में तल्लीन हो।
हो प्रेम केवल ईश मे, भगवच्चरण मनमीन हो॥
अपना पराया भूल जा. हरि प्रेम में अनुरक्त हो।
आसक्ति सबको छोड़ केवल विष्णु में आसक्त हो॥

५

जप नाम हरि का जोर से, धीरे भले ही ध्यान में।
हरिनाम का हर रोम में से शब्द आवे कान में॥
विश्वेश को कर प्यार प्यारे, आत्म का कल्याण कर।
सबको मिटा तू सर्व हो जा, ईश का नित गान कर॥

६

सुख–शान्ति का भण्डार तेरे चित्त मांही गुप्त है।
पर्दा हटा हो जा सुखी, क्यों हो रहा संतप्त रे॥
सुख–सिंधु मांही मग्न हो, मन मैल सारा दे बहा।
हो शुद्ध निर्मल चित्त तू ही विश्व में है भर रहा॥

७

पावन परम शुचि शास्त्र में से नित्य पावन सार सुन।
उनका निरन्तर कर मनन विश्वेश के गा नित्य गुण ॥
विश्व में जो संत जीवन मुक्त पहले हो गए–
उनकी कथाएं गा सदा मन शुद्ध करने के लिये ॥

८

सद्‌गुरु कृपा गुणयुक्त का उठ प्रात ही धर ध्यान रे।
निजदेह से अरू प्राण से प्यारा अधिकतर मान रे ॥
सिर को झुकाकर दण्डवत्‌ कर नमन आठों अंग से।
उनकी कथाएँ गा सदा, मन शुद्ध करने के लिये ॥



संत कबीर जैसे सन्तोंकी कथाएँ गाएं सदा

९

एकान्त में फिर जाय के, तू वेग का परित्याग कर।
दांन्तोन करके दाँत मल, मुख धोय जिह्वा साफ कर॥
रवि के उदय से पूर्व ही, हो शुद्ध जा तू स्नान से।
शुचि वस्त्र तन पर धार के, कर प्रात संध्या मान से॥

१०

उच्चार पावन मंत्र कर, मन मंत्र मांही जोड़कर।
कर अर्थ की भी भावना भववासनाएं छोड़ कर॥
कर ब्रह्म से मन पूर्ण सब में ब्रह्म व्यापक देख रे।
कर क्षीण पावन रेख पर भी मार दे तू मेख रे॥

११

जो कर्म होवे आज का ले पूर्व से ही सोच सब।
यह कार्य कैसे हो गया, किस रीत से है और कब॥
जो कार्य जिस जिस कल का हो पूर्ण मन में धार ले।
जिस जिस नियम से कार्य करना हो भले निर्धार ले॥

१२

सम्मुख सदा रह ईश के, तेरा सहायक है वही।
करुणा जल्दी हरी की शरण ले श्रेयकारक है वही॥
जो लेय करूणानिधि शरण संसार सो ही तर सके।
जिस पर कृपा हो ईश की साधन वही है कर सके॥

१३

विश्वेश की हो जो शरण, संसिद्धि तब ही प्राप्त है।
केवल उसका कर भरोसा, मात्र उसका भक्त हो॥
जो कुछ तुझे हो ईष्ट सो केवल उसी से मांग रे।
मत कर भरोसा अन्य का आशा सभी तू त्याग रे॥

१४

सच्चे हृदय से प्रार्थना जब भक्त सच्चा गाय है।
तो भक्तवत्सल कान में वह पहुँच झट ही जाय है॥
विश्वेश करुणाकर तुरत ही भक्त पर करुणा करे।
लाखों करोडों जन्म के अघ एक क्षण में ही हरे॥

१५

सच्चे हृदय की प्रार्थना निश्चय सुने जगवास है।
नहीं भक्त से है दूर वह रहता सदा ही पास है॥
ज्यों ज्यों करेगा प्रार्थना, भय दूर होता जायेगा।
कर प्रार्थना, कर प्रार्थना, कर प्रार्थना सुख पाएगा॥

१६

संसार मिथ्या वस्तुओं में, यदि तुझे नहीं राग हो।
संशय नहीं हरिचरण में, जल्दी तुझे अनुराग हो॥
कर प्रार्थना विश्वेश से, प्रभु! भक्ति अपनी दीजिये।
हो प्रेम केवल आप में, ऐसी कृपा प्रभु कीजिये॥

१७

कर प्रार्थना फिर प्रेम से, मम विनय प्रभु सुन लीजिये।
हे नाथ मैं भूला हुआ हूँ, मार्ग दिखला दीजिये॥
मुझ अन्ध को प्रभु आँखें दीजे, दर्श अपना दीजिये।
निज चरण की रज सेव में, मुझको लगा प्रभु लीजिये॥

१८

संसार–सागर पार मैं नहीं जा सकू हूँ हे प्रभो!
मल्लाह मेरी नाव के नहीं आप जब तक हो विभो!
उठता यहाँ है ज्वार–भाटा, रोक उसको लीजिये।
संसार सागर पार मुझ को शीघ्र ही कर दीजिये॥



भक्त ध्रुवकी तरह प्रार्थना,
ध्यान और भक्ति करें।

१९

सर्वज्ञ है प्रभु सर्वविद् करुणा-दया से युक्त हैं।
स्वाभाविकी बल क्रिया से प्रभु सहज ही संयुक्त है॥
नहीं मैं हिताहित जानता, प्रभु! ज्ञान मुझको दीजिये।
भूले हुए मुझ पथिक को भव पार स्वामी कीजिये॥

२०

प्रभु आपकी मैं हूँ शरण, निज चरण-सेवक कीजिये।
मैं कुछ नहीं हूँ मांगता, जो आप चाहें दीजिये॥
सिर आँख से मंजूर है, सुख दीजिये दुःख दीजिये।
जो होय इच्छा कीजिये, मत दूर दर से कीजिये॥

२१

है आप ही तो सर्वफिर कैसे करूँ मैं प्रार्थना।
सब कुछ करें है आप ही क्या बोलना क्या चालना॥
फिर बोलना किस भाँति ही है, मौन ही सबसे भला।
रक्षक तू ही, भक्षक तू ही, तलवार तू, तेरा गला॥

२२

विश्वेश प्रभु के सामने कर प्रार्थना इस रीति से।
या अन्य कोई भांति से, सच्चे हृदय से प्रीति से॥
जो होय सच्ची प्रार्थना विश्वेश सुनता है सभी।
विश्वेश की आज्ञा बिना पत्ता नहीं हिलता कभी॥

२३

फिर कार्य कर अपना सभी दिन का नियम से ध्यान कर।
एकाग्र हो के धैर्य से, आनन्द मन सुख चैन से॥
घबरा न जा, मन शान्त रख, मत क्रोध मन में ला कभी।
प्रभु देव देव प्रसन्नता हित कार्य जो हो कर सभी॥

२४

जब शयन का आवे समय एकान्त में तब बैठकर।
जो कार्य दिन में हो किया, ले सोच सब मन स्वस्थ कर॥
जो जो हुई हो भूल दिन में सर्व लिख ले चित्त पर।
आगे कभी नहीं भूल होवे पाथ ऐसा तू चला कर॥

२५

जो कार्य करना हो तुझे अच्छी तरह से सोच ले।
मत कार्य को ही कर बिना सोचे, बजा ले, ठोक ले॥
सोचे बिना जो कार्य करते अन्त में गिर जाय हैं।
जो कार्य करते सोच कर, वे ही सफलता पाय हैं॥

२६

राजा नहुष जैसे गिरा था, स्वर्ग से ऋषि शाप से।
आसक्त हो जो भोग में, हैं तप्त वे सन्ताप से॥
सब कर्म कर तू न्याय से, अन्याय से रह दूर तू।
आश्रय सदा ले धर्म का, मत क्रुद्ध हो, मत क्रूर तू॥

२७

हो उच्च तेरी भावना, मत तुच्छ कर तू कामना।
कर्त्तव्य से मत चूक चाहे मृत्यु का हो सामना॥
जो पास भी हो मृत्यु तो भी मृत्यु से कुछ भय न कर।
डरपोक कायर मृत्यु से भयभीत रहते, तू न डर॥

२८

आचार अपना शुद्ध रख मत हो दुराचारी कभी।
मत कार्य कोई रख अधूरा, कार्य पूरे कर सभी॥
मत तुच्छ भोगों की कभी तू भूल के कर कामना।
है ब्रह्म अक्षय नित्य सुख कर तू उसी की भावना॥

२९

पुरुषार्थ अन्तिम सिद्ध कर आशा जगत् की छोड़ रे।
भय-शोकप्रद है भोग सब, मुख भोग से तू मोड़ रे॥
विश्वेश सुख के सिन्धु में ही चित्त अपना जोड़ दे।
रिश्ता उसी से जोड़ दे, नाता सभी से तोड़ दे॥

३०

जैसे झड़ी बर्सात की सब चर अचर की जान है।
त्यों ही विश्वेश की, सब विश्व जीवन दान है॥
सब पर दया है एक सी, क्या अज्ञ है क्या प्राज्ञ है।
सब के मिटाती दुःख सबको बनाती तत्वज्ञ है॥

३१

सचमुच मिटाती कष्ट सारे शान्ति अक्षय देय है।
कुण्ड़ी उसकी खटखटा, यदि चाहता निज श्रेय है॥
अध्यात्म का अभ्यास कर, संसार से वैराग्य कर।
कर्त्तव्य यह ही मुख्य है, विश्वेश में अनुराग कर॥

३२

संसार जीवन से बना, अध्यात्म जीवन आपना।
सुख शान्ति जिसमें पूर्ण, जिसमें दुःख ना, सन्ताप ना॥
जीवन बिता इस भांति से, नहीं प्राप्त फिर संसार हो।
सहु ब्रह्म में तल्लीन होकर, सार का भी सार हो॥

३३

शिष्टाचरण में प्रीत कर हो धर्म पर आरूढ़ तू।
हो शुभ गुणों से युक्त तू रह अवगुणों से दूर तू॥
जो धर्म पर आरूढ़ हैं, वे शूर होते धीर भी।
है सत्य निशि-दिन पालते नहीं सत्य से हटते कभी॥

३४

यदि पुण्य में रत होएगा तो धीर तू बन जायेगा।
जो पुण्य थोड़ा होय तो भी कीर्ति जग फैलाएगा॥
मत स्वप्न में भी पाप का आचार कर तू भूल कर।
निष्पाप रह, निष्काम रह, पापाचरण पर धूल धर॥

३८

हो पुण्य में तू रत सदा, दे दान तू सम्मान से।
उत्साह से सुख मानकर, दे दान मत अभिमान से॥
है वस्तु सब विश्वेश की, अभिमान तेरा है वृथा।
निज स्वार्थ तज कर कार्य कर बादल करे वर्षा यथा॥

३६

अभिमान मत कर द्रव्य का, अभिमान तज दे नेह का।
अभिमान कुल का त्याग दे, अभिमान मत कर देह का॥
कर्मेन्द्रियाँ ज्ञानेन्द्रियाँ सब ईश को ही मान रे।
मन बुद्धि शिव को अर्प दे, शिव का सदा कर ध्यान रे॥



दान करे तो राजा रन्तिदेव की तरह

३७

वैराग्य सच्चा पुण्य है, वैराग्य सच्चा कर्म है।
वैराग्य ही है फल खरा, वैराग्य उत्तम धर्म है॥
दे त्याग अपना आप, अपने आपको फिर प्राप्त कर।
हो जा सभी कुछ आप हो, तू आप ही को तृप्त कर॥

३८

कर कार्य सब शिव के लिये, कुछ भी न कर अपने लिये।
सेवा सदा ही विश्व की, विश्वेश पूजन के लिये॥
मत भेद रंचक मान रे, विश्वेश ही सब जान रे।
पर या अपर सब विश्व में, विश्वेश हो पहचान रे॥



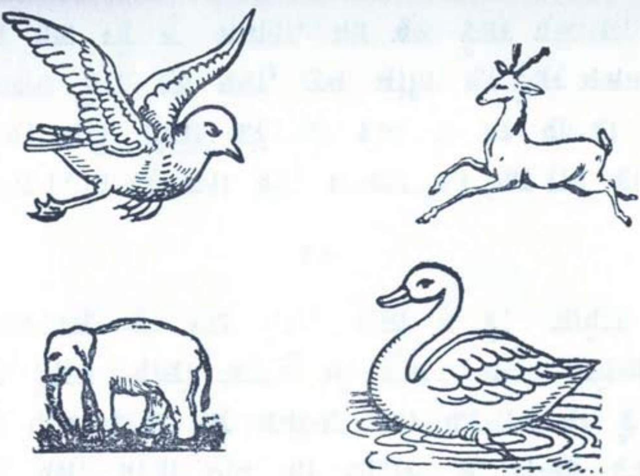
भगवान बुद्धका गृहत्याग(वैराग्य): रात्रिके अंधकार में नवजात शिशु, पत्नी, राजमहल, सब कुछ छोड़कर गौतम बुद्ध सत्यकी खोजमें निकल पड़े

३९

इन्द्रादि देव न पूज तू प्यारे, सदा ही हवन से।
पूजा किया कर ऋषिन की, स्वाध्याय पाठन–पठनसे॥
संतृप्त पितृन नित्य कर, तू श्राद्ध तर्पण कर्म से।
श्रद्धा तथा विश्वास से मत हो प्रमादी धर्म से॥

४०

अंधे बिना पग हाथ वालों को मदद कर दान से।
सेवा किया कर रोगियों की, देह से, मन–प्राण से॥
मेहमान का सत्कार कर तू, खान से अरू पान से।
भिक्षुक अतिथि सन्तुष्ट कर भोजन वसन सम्मान से॥



सर्वत्र आत्मतत्वका दर्शन करें.

४१

पशु पक्षी प्राणी मात्र को आहार दे सन्तुष्ट कर।
जो पांच करता यज्ञ धर्मात्मा वही कहलाय नर है॥
कर नित्य पांचो यज्ञ तू तो पुण्य अक्षय पायेगा।
अन्तःकरण हो शुद्ध तेरा, सन्त तू हो जायेगा॥

४२

संध्या किया कर प्रातः की, मध्याह्न की फिर रात की।
संध्या नहीं तीनों करें सो होय है नर पातकी॥
बतलाय तेरा गुरु यथा, उस भांति कर ईश्वर भजन।
जब तक रहे तू जागता, मत भूल ईश्वर एक क्षण॥





मुर्गे की बांग के साथ ही सूर्योदय से पूर्व ही उठ जायं
और ध्यान भजन में लग जायं।

४३

विश्वेश के पूजन भजन में रह सदा ही मग्न रे।
निज देह को निज बुद्धि को कर ईश में संलग्न रे॥
जब तक न हो मन चुप तब तक ईश का धर ध्यान रे।
कर विश्वभर का विस्मरण, विश्वेश को पहचान रे॥

४४

विश्वेश है निष्क्रिय तथापि विश्व का कर्तार है।
जग है विकारी दीखता, विश्वेश में न विकार है॥
आश्चर्यमय है विश्व यह संयुक्त दृष्टा दृष्य है।
विश्वेश कर्ता विश्व का विश्वेश ही यह विश्व है॥

४५

जो कुछ जगत में भासता, जगदीश ही है भासता।
नहीं आदि है नही मध्य है, नही अन्त का उसके पता॥
सच्चित स्वयं ही सिद्ध है, आनन्द से भरपूर है।
है पास तेरा हर समय, तुझसे नहीं वह दूर है॥

४६

हठयोग प्राणायाम का करना तुझे यदि इष्ट है।
आचार्य से जा सीख ले, करना स्वयं नही श्रेष्ठ है॥
अभ्यास प्राणायाम का आचार्य के कर सामने।
हों नाडियाँ सब शुद्ध तेरी, देह कंचन का बने॥

४७

खाने पहनने में नहीं आसक्त होना चाहिये।
भोजन करे हल्का सदा, सुथरा पहनना चाहिये॥
कमरा रखा कर स्वच्छ अपना व्यर्थ ही मत फिर कहीं।
प्रेमी न हो तू स्वाद का, छैला चिकनिया बन नहीं॥

४८

छैला चिकनिया होय जो माया नहीं सो तर सके।
जो त्याग दे विष सम विषय सब, योग सो ही करे सके॥
जो देय धोखा अन्य को, सो आप धोखा खाय है।
धोखा किसी को दे नहीं यदि इष्ट अपना माथ है॥

४९

नहीं स्वार्थ साधन है भला मन स्वार्थ में तल्लीन हो।
व्यवहार सच्चा कर सदा मत सिर उठा, मत दीन हो॥
जो स्वार्थ अपना साधता, जो स्वार्थ अपना खोय है।
जो रत रहे पर श्रेय मांही, श्रेय उसका होय है॥

५०

तू जानता मैं ही चतुर हूँ, मूर्ख सबको मानता।
धोखे घड़ी में कर सकूं, नहीं दूसरा कर जानता॥
पण्डित बहुत हैं विश्व में, धोखा न तुझसे खाएंगे।
तेरे वचन छल दम्भ के, पहचान झट ही जाएंगे॥

८१

विश्वेश साक्षी देव सोता, है नहीं नित जागता।
रहता सदा है पास तेरे, सब क्रियाएं ताकता॥
जो जो करे संकल्प तू, सबको सदा है जानता।
अच्छा बुरा जो तू करे, रहता उसे है सब पता॥

८२

निश्चेष्ट तू सो जाय तब करता न कोई पाय है।
चिन्ता नहीं, ईर्ष्या नहीं, होता नहीं संताप है॥
जीता रहे तू जब तलक तब तक न कोई पाप कर।
सोते हुए सम कार्य कर, तो जायेगा संसार तर॥

८३

कमजोरियाँ छोटी बड़ी सब बीन कर तू छाँट दे।
शाखा न केवल तोड़ उनकी मूल तक भी काट दे॥
मत राग कर मत द्वेष कर, नीचा गिराएंगे तुझे।
अभ्यास कर वैराग्य कर, ऊँचा चढाएंगे तुझे॥

८४

कर्त्तव्य दिन का यज्ञ का हो, मास का या साल का।
कर तू समय पर चित्त दे, क्या आज का क्या काल का॥
होली दीवाली आदि सब व्यवहार कर तू नियम से।
उत्साह से, आह्लाद से, मन इन्द्रियों से, प्रेम से॥

५५

जा द्वारिकादिक तीर्थ पावन देख सारे स्नान कर।
श्रद्धा तथा विश्वास से, भोजन वसन का दान कर॥
कर्त्तव्य तेरा होय जो, मत चूक उसमें लेश भी।
मत खर्च की परवाह कर, सह प्रेम से ले क्लेश भी॥

५६

संकोच मन से कर नहीं, दे दान मन को खोलकर।
श्रद्धा विनय से युक्त होकर स्वस्थ मीठा बोलकर॥
छोटे बड़े चर अचर में भी देख केवल ईश रे।
कर विश्व में विश्वेश दर्शन झुक नवाकर शीश रे॥

५७

मन कर्म वाणी से यहाँ कोई न प्यारे पाप कर।
मत क्रोध कर मत लोभ कर, मन से नहीं सन्ताप कर॥
कर तीर्थ निर्मल चित्त से, आने न दे मन काम रे।
जो काम के वश होय है, पाता नहीं सो राम रे॥

५८

साधू महात्मा सन्त के जा पास प्यारे दौड़कर।
धर भेंट उनके सामने सिर को झुका कर जोड़ कर॥
जो जो कहे सुन चित्त देकर प्रेम श्रद्धा भक्ति से।
कर हाथ से या पैर से सेवा यथावत् शक्ति से॥

५९

निष्काम कर सेवा सदा, मन में न रख कुछ कामना।
निःस्वार्थ हो निज धर्म कर, मत स्वार्थ की कर भावना।
अपनी न इच्छा पूर्ण कर, कर पूर्ण इच्छा संत की।
जो होय पूजा संत की सो जान देव अनन्त की॥

६०

निःस्वार्थ सच्चा प्रेम ही केवल नहीं पर्याप्त है।
हो बुद्धि जिसकी सूक्ष्म सो ही पा सके परमार्थ है॥
हो बुद्धि जिसकी तीक्ष्ण, सो ही संत को पहचानता।
क्या सत्य और असत्य है, मोहान्ध मति नहीं जानता॥

६१

छः शत्रु डाकू हैं महा, बटमार पथ में भक्ति के।
जो शत्रुओं को जीत ले, सो सन्त सेवा कर सके॥
हो चित्त जिसका शुद्ध, सो ही सन्त दर्शन पा सके।
सेवा वही है कर सके, मेवा वही है खा सके॥

६२

सेवा करे जो सन्त की, सो सत्य को है जानता।
माया तथा मायेश सम्यक् रीति से पहचानता॥
जो पाय सम्यक् ज्ञान सो संसार से है छूटता।
नहीं शोक हो, नहीं मोह हो, आनन्द अक्षय लूटता॥

६३

मतकर कमाई पाप की, तू मुक्ति देकर आड़ में।
बनते भगत ठगते जगत, वे पड़त जलते भाड़ में॥
व्यापार सच्चा कर सदा, मत छल कपट के पास जा।
करता ठगी जो साधु बनकर अधिक पाता है सजा॥

६४

दिखला न अपने शुभ गुणन, मत अन्य दोष निहार रे।
मत देख कूडा अन्य का निज भुवन द्वार बुहार रे॥
शुभ गुण सभी के कर ग्रहण, कर शुद्ध निज अंतःकरण।
जो स्वच्छ दर्पण होय सो ही विम्ब करता है ग्रहण॥

६५

अध्यास मत कर देह में मत मित्रता अभिमान से।
अज्ञान को निर्मल कर तू सत् असत् के ज्ञान से॥
मत तामसी तू बन कभी, मत हो कभी तू राजसी।
सारी क्रिया कर सात्विकी, हो स्थूल अथवा मानसी।

६६

जब सत्वगुण बढ़ जायेगा अज्ञान-मल धुल जायेगा।
तब द्वार सुखकर मोक्ष का, तेरे लिये खुल जायेगा॥
आनन्द का अक्षय खजाना, हाथ तेरे आएगा।
चिन्ता-चिता में नहीं जलेगा, शांति अविचल पाएगा॥

६७

नहीं भेद रंचक तत्व में, माया किया नाना पना।
आसक्त जिस में होय तू, होता उसी से दुःख घना॥
आसक्ति को दे छोड़, फिर माया न तुझमें लेश है।
मायेश की तू ले शरण, उसमें न किंचित् क्लेश है॥

६८

नानापने को त्याग दे, कर ईश में अनुराग रे।
तज भेद माया का रचा, निज तत्व में जा जाग रे॥
एकत्व का गोला लगा, माया किले को तोड़ दे।
कर दर्श सब में एक का, भांड़ा दुई का फोड़ दे॥

६९

विश्वेश का कर दर्श तू, संग्राम के मैदान में।
विश्वेश को ही देख तू, बस्ती तथा संसार में॥
विश्वेश को पहचान तू बागों तथा श्मशान में।
विश्वेश को ही जान तू स्वर ताल सरगम तान में॥

७०

जगदीश का कर दर्श घाटी में गुफा में शिखर में।
गंगादि नदियों मांही, सागर की उछलती लहर में॥
वर्षा झड़ी में मेघ में विद्युत् चपल में उपल में।
पीले हरे नीले अरुण धनुरंग में नभ धवल में॥



सूरज, उमड़ते-घुमड़ते मेघ, नदी-नाले, सागर, इन्द्रधनुष्
सब में जगदीश 'आत्मतत्व' के दर्शन करें

७१

मायेश का कर दर्श प्यारे, भूख में अरु प्यास में ।
आशा निराशा भय अभय में, दूर में अरु पास में ॥
अन्याय में अरु न्याय में सन्तोष में अरु लोभ में ।
चिन्ता अचिन्ता क्रोध में, सुख शान्त में अरु क्षोभ में ॥

७२

पूर्णेश अनुसंधान कर तू जान में अनजान में ।
वाहन वसन आभूषणों में, खान में अरु पान में ॥
सुर में मुनिन में ऋषिन में, लकड़ी तथा पाषाण में ।
निज श्रेय हित पर प्रेय हित लख ईश तन में प्राण में ॥

७३

कर यत्न ईश्वर देखने का सब चराचर विश्व में।
सब नाम में सब रूप में गुण तीन पांचो तत्व में॥
मत भूल तू क्षण एक भी विभु विश्व व्यापी ईश को।
परिपूर्ण सब मैं एक सर्वातीत, सर्वाधीश को॥

७४

जो वस्तुएं देखे सभी में तत्व को पहिचान रे।
तज नाम दे, तज रूप दे, शिव तत्व सच्चा जान रे॥
जब दृष्टि देगा तत्व पर, नहीं अन्य कुछ भी पाएगा।
जब एक ही है ठोस तो दूजा कहाँ से आएगा॥

७५

कुत्ता जहाँ आवे नजर, कुत्ता उसे मत मान रे।
दे ध्यान कुत्ते का हटा, कर ईश का ही ध्यान रे॥
मत देख कुत्ता गुह्य उसमें ईश को पहिचान रे।
है नाम मिथ्या रूप मिथ्या ईश सच्चा जान रे॥

७६

दिखे परमाणु जब कहीं, परमाणु उनको कह नहीं।
परमाणु संज्ञा भूल जा, शिव दर्शन देवेगा वही॥
मत देख तू परमाणु को, परिपूर्ण का ही ध्यान कर।
परिपूर्ण का कर लक्ष तू, परिपूर्ण अनुसन्धान कर॥

७७

यह आत्म तत्व अजर अमर, उष्मा रहित शिव सत्य है।
परिपूर्ण सब में एक रस, निर्गुण निरामय नित्य है॥
है ज्योतियों का ज्योति वह, सबसे प्रथम है भासता।
करता उजाला विश्व का, रवि–चन्द अग्नि प्रकाशता॥

७८

आनन्द अज्ञेय सिन्धु है, चैतन्य का चैतन्य है।
माया अविद्या से परे, निर्द्वन्द्व देव अनन्य है॥
कारण रहित, निर्मल परम, भूमा सनातन सर्व पर।
आकाश सम सर्वत्र व्यापक देव का निज ध्यान कर॥

७९

सुर पितृ नर मुनि देह में है एक वह ही भर रहा।
उत्पत्ति पालन लय सभी का देव शाश्वत् कर रहा॥
सब प्राणियों के देह में घुस कर करे रे चिन्तवन।
यज्ञादि करता है वही, सुनता वही करता मनन॥

८०

एकत्व पर रख ध्यान तू, नानापने में न उलझ।
भय त्याग दे हो जा अभय, तज क्रोध का तू साथ रे॥
कर प्रेम सब पर क्षमा, शम, दम, तितिक्षा पाल रे।
सच बोल पूरा तोल रे, सब कामनाएँ टाल रे॥

उत्पन्न होता धर्म–अंकुर, सत्यरूपी बीज से।
बढ़ता दया दम दान अरु वैराग्यरूपी सींच से॥
रहता क्षमा में है सदा क्रोधाअग्नि से जल जाय है।
मत क्रोध आने पास दे, यदि धर्म तुझको भाय है॥

८२

कर धर्म को प्यारे! ग्रहण, मन-बुद्धि दोनों रख विमल।
मत भूल क्षण भर भी कभी, भगवत् दया सागर अचल॥
जब चित्त तेरा होय चञ्चल, भाग जावे अन्य में।
ला खींचकर मनको लगा दे, चरण देव अनन्य में॥

८३

मत राग कर तू एक में, मत द्वेष कर तू अन्य में।
मत भय किसी से खा कभी, मन–बुद्धि रख चैतन्य में॥
जो ईष्ट तेरा है कभी, आता नहीं संसार में।
सर्वत्र ही भरपूर है, क्या वार में क्या पार में।

८४

सर्वत्र उसको देख तू, सब में उसी को जान रे।
सम्मदृष्टि सब में रक्ख, मत दूजा किसी को मान रे॥
धो डाल सारे दोष कूड़ा चित्त का सब दे बहा।
हो शुद्ध प्यारे शान्त हो, यह धर्म उत्तम है महा।



धोबी की तरह अपने मन के सब विकार झूठ, कपट, क्रोध, मोह, मद, लोभ आदि धो डाले और ईश्वर तत्व के अनुभव के लिये मन को शुद्ध कर लें

८५

ऐसे निरंतर यत्न में प्यारे! जभी लग जाएगा।
कुछ काल के अभ्यास से, अभिमान सब गल जाएगा॥
तब चित्त तेरा शुद्ध गंगा नीर सम हो जाएगा।
अद्वैतता एकत्व तू सब वस्तुओं में पाएगा॥

८६

होगा उदय विज्ञान रवि, तब तम सभी भग जाएगा।
मैं हूँ यही नहीं दूसरा, तू जानने लग जाएगा॥
अभ्यास कर फिर योग का, वैराग्य निर्मल पाएगा।
बाकी सभी छूट जाएगा, तू शुद्ध ही रह जाएगा॥



योगाभ्यास द्वारा जब अज्ञान रूपी अंधकार दूर होगा और ज्ञान रूपी सूर्य का उदय होगा तब संसार में रहते हुए भी संसार का लेप नहीं लगेगा और जल में कमलवत् इस विश्व में हम रह सकेंगे।

८७

कर योग कुछ दिन और योग अभ्यास तब बढ़ जायेगा।
हो पूर्ण पक्व विवेक तब वैराग्य दृढ़ता पायेगा॥
ज्यों ज्यों घटेगा राग, ज्यों ज्यों द्वेष घटता जायेगा।
त्यों त्यों अमल निश्चल चमकना चित्त होता जायेगा॥

८८

माया नटी के पेच सब पहिचान तब तू जायेगा।
श्रृँगार कैसे ही करे, धोखा नहीं तू खायेगा॥
सम चित्त हो व्यवहार कर निर्द्वंद्व तू हो जायेगा।
श्रद्धा अमल में जागकर, संसार से सो जायेगा॥

संसार जलती आग है, उस आग में अब तू न जल।
कर यत्न इस से छूटने का, दूर इससे जा निकल॥
कर खोज सच्ची शान्ति का, चिन्ताग्नि में मत तात! जल।
सद्गुरू सुहृद् की खोज कर, भय शोक चिन्ता जाय टल॥

९०

सद्गुरु सुहृद् मिल जाय जब, ले तू उसी का तब शरण।
विश्वास उस पर पूर्ण कर, ले पकड़ सद्गुरु के चरण॥
माया-नटी से मुक्त सद्गुरु ही करे तारण-तरण।
सब भांति सेतू हो शरण, होगा न तेरा फिर मरण॥

९१

सद्गुरु सहृद् करुणा –भवन के पद कमल कर तू ग्रहण।
दे देह अपना सौंप गुरु को, अर्प दे अन्तःकरण॥
नाता उसी से जोड़ तू वह ही है एक चिन्ता हरण।
सेवा उसी की कर सदा, केवल उसी को कर नमन॥

९२

अभिमान तज के भज उसे, तू प्रेम से अरु भक्ति से।
जो जो कहे शिर धार ले, विश्वास से अनुरक्ति से॥
सन्तोष मन में रख सदा, निर्मल विनय संतृप्ति से।
जो होय शंका दूर कर सब शास्त्र से अरु युक्ति से॥



राजा शिवाजीने राजपाट आदि सब वैभव अपने गुरु समर्थ रामदास को समर्पित कर दिय। ऐसी गुरु भक्ति ने ही शिवाजी को महान् बना दिया।

९३

संसार भर में मात्र तेरा एक सद्गुरु मित्र है।
सब बंधु जग में बांधते करता वही निज तन्त्र है॥
नव जन्म तेरा है हुआ, सब बंधनों को तोड़ दे।
नूतन भवन में वास कर, अब घर पुराना छोड़ दे॥

९४

कोई नही तेरा यहाँ, अपना पराया छोड दे।
सम्बन्ध बन्धन काट दे, नाता जगत का तोड़ दे॥
आसक्ति अब मत कर किसी में, विश्व से मुख मोड़ दे।
संकल्प तक भी त्याग दे, भांड़ा दुई का फोड़ दे॥

९५

सम्पन्न चारों साधनों से, मोक्ष पथ पर चाल रे।
भिक्षा चरण की वृत्ति ले अब त्याग जग-जंजाल रे॥
बन भिक्षु सच्चा भिक्षुओं का धर्म सम्यक् पाल रे।
निःसंग हो कर विचर जग-सम्बन्ध सारे टाल रे॥

९६

जीवन नये का धर्म सम्यक् सीख निज आचार्य से।
कर्तव्य अपना पूर्ण कर, मत चूक अपने कार्य से॥
संसार दारुण रोग है, हो मुक्त इस संसार से।
मन कर्म वाणी शुद्ध हो, मत भ्रष्ट हो आचार से॥

९७

श्रोतादि सारी इन्द्रियां, शब्दादि विषयों से हटा।
इस लोक का परलोक का भी ध्यान मन से दे मिटा॥
निज देह को जा भूल तू, संकल्प सारे दे भगा।
संकल्प से कर शून्य मन, चैतन्य में मन दे लगा॥

९८

लग ध्यान में चैतन्य के भीतर घुसा ही जा चला।
एकाग्र करके चित्त को चैतन्यघन में दे मिला॥
चैतन्यघन निज आत्म का दर्शन मुझे हो जायेगा।
सद्ब्रह्म-विद्या प्राप्त कर के पूर्ण सुख तू पाएगा॥

९९

एकान्त में तू बैठ कर, निज आत्म अनुसन्धान कर।
कर ध्यान अपने आपका, मत दूसरे का ध्यान कर॥
संतुष्ट अपने आप में हो, आप को सम्मान कर।
हो तृप्त अपने आप में ही विश्व मिथ्या जान कर॥

१००

रह तू अकेला एक ही, मत दूसरे का साथ कर।
घर या कुटी में रह नहीं सर्वत्र इकला ही विचर॥
पालन तितिक्षा कर सदा शीतोष्ण सुख दुःख सहन कर।
मत कर भरोसा दूसरे का फिर अकेला हो निडर॥

एकान्त में जा कर राजा जनक का आत्मचिंतन

❋



–राजा जनककी तरह आत्म अनुसंधान करें : मैं अपने आप में तृप्त हूँ। यह जगत् मिथ्या है। अब मेरा विवेक जागा है। मैं सत् चित् आनन्द स्वरूप हूँ।

१०१

साथी न कोई ढूंढ़ रे, सामान मत रख पास रे।
सोना न छू, चान्दी न ले, मत कर किसी की आस रे॥
रह शान्त मन निश्चल सदा, मत लक्ष्य अपना त्याग रे।
माया नटी के खेल में, मत लेश कर अनुराग रे॥

१०२

माया महा है मोहनी, फाँस तू न माया जाल में।
सुंदर यहां पर कुछ नहीं काला पड़ा है दाल में॥
हैं वस्तुएं सब मोहिनी, ज्यों सर्प कोमल घास में।
तू प्राण उन से ले बचा, फंस जा न उनके पाश में॥

१०३

ज्यों सर्प से सब भागते, रह दूर राक्षस काम से।
है काम तुझमें जब तलक, नहीं भेंट होगी रामसे॥
नहीं शान्त तुझको हो कभी सोवे न तू आराम से।
नहीं सिद्धि हो संन्यास को, नहीं योग आत्माराम से॥

१०४

हों गेरुएं कपड़े रंगे हुवे कमण्डल हाथ मे।
लम्बी शिखा उपवीत पावन हो तिलक भी माथ में॥
यदि कामवश हो जाय तू कोई न आवें काम में।
मन काम के वश हो कभी कर प्रेम आत्माराम में॥

१०५

माया-नटी के चक्र में हे तात ! मत तू आ कभी।
जितनी जगत की वस्तुऐं हैं त्याग दे प्यारे! सभी॥
दे त्याग प्यारे! दूर से इस देह का सम्बन्ध भी।
निर्भय विचर संसार में, साम्राज्य पावेगा तभी॥

१०६

मत मांस हडडी-चाम के इस देह में आसक्त हो।
कामी न बन, लोभी न हो, मत भूल विषयासक्त हो॥
आलस्य के वश हो नहीं, ज्ञानी अमानी धी हो।
धर्मज्ञ हो तत्वज्ञ हो, योगी विरागी वीर हो॥

१०७

माधूकरी आहार कर, एकत्र का कर त्याग दे।
भोजन सलोने चटपटे मिष्टान्न में तज राग दे॥
रूखा मिले सूखा मिले, जैसा मिले मत ध्यान दे।
भागवत्-प्रसाद जान कर, आहार कर सम्मान दे॥

१०८

दिन रात में इक बार ही भिक्षार्थ पुर में कर गमन।
मत तंग कर संसारियों को इन्द्रियों का कर दमन॥
जो आपसे ही दे तुझे, केवल उसे ही कर ग्रहण।
भोजन अधिक मत मांग रे, मत दीन हो मत कर नमन॥

१०९

पर्याप्त भोजन जाय मिल, खाकर उसी को कर गुजर।
भोजन सिवा मत दूसरा, कोई पदार्थ कर ग्रहण ॥
पर्याप्त भोजन नहीं मिले, मन में न कुछ उद्वेग कर।
रख शांति मन में स्वस्थ रह, निन्दा न कर सुख से विचर ॥

११०

संतुष्ट रह तू सर्वदा, निर्द्वन्द्व हो तू सर्वथा।
निर्वाह कर निज देह का आहार कर औषधि यथा ॥
भोजन समय मुख हो किधर, यह प्रश्न तेरा है वृथा।
सर्वत्र ही एकत्व है, फिर भेद की है क्या कथा ॥

१११

भिक्षार्थ केवल जा नगर दूजे समय मत जा कहीं।
संसारियों का संग करना, योग्य तुझको है नहीं ॥
एकान्त में नित वास कर ईश्वर भजन में लग सदा।
वैराग्य से संयुक्त हो कर ब्रह्म-चिन्तन सर्वदा ॥

११२

मांगे बिना जो भेंट लाकर दे तुझे कोई गृही।
यदि हो अपेक्षा कर ग्रहण, रह तू सदा ही निस्पृही ॥
जितनी बढेगी वस्तुएं, उतना बढ़ेगा दुःख भी।
जितना करेगा त्याग, उतना ही रहेगा स्वस्थ भी ॥

११३

संग्रह अधिक अच्छा नहीं, यह मोक्ष पथ में आड़ है।
कैसे भला तू भग सके सिर पर लदा जब भार है॥
कल के लिये एकत्र करना, मूर्खता का काम है।
बे दाम चिन्ता मोल ले, पंडित न उसका नाम है॥

११४

वैराग्य के रह साथ तू, वैराग्य रक्षक तात है।
निर्वाह कर नित मधुकरी पर, मधुकरी ही मात है॥
श्रद्धा प्रिया पत्नी चतुर, विज्ञान तेरा पुत्र है।
प्यारी सुता हरि-भक्ति है, सन्तोष तव सन्मित्र है॥

११५

सन्ता चरण परिपाल, सन्तों मध्य तू आदर्श हो।
पावन परम निर्दोष रह, नहिं पाप से संस्पर्श हो॥
विद्या उजाला भक्त हो, विज्ञान पूर्ण प्रकाश हो।
दीखें यथावत वस्तु सब, अज्ञान-तम का नाश हो॥

११६

कम कर न अपनी शुद्धता, कर प्राप्त पूरी शुद्धता।
रह बाह्य भीतर एकसा, कर शौच की परिपूर्णता॥
ज्यों सूर्य हो तू तेजमय, शीतल हृदय ज्यों चंद्रमा।
जैसे स्फटिक हो स्वच्छतम, रंचक न रहवे कालिमा॥

११७

ज्यों सिन्धु अति गम्भीर हो, गिरिसम परम गतिधीर हो।
धारण क्षमा कर ज्यों क्षमा, मत भीरु हो, न अधीर हो॥
भण्डार अक्षय का कभी नहीं ध्यान मन से दूर हो।
कर ध्यान उस का सर्वदा आनंद से भरपूर हो॥

११८

हर क्षण यही रख ध्यान, आगे योग में तू बढ रहा।
अभ्यास अरु वैराग्य में है यत्न पूरा कर रहा॥
जो कार्य तू है कर रहा सब ही यथावत् कर रहा।
व्यवहार सच्चा कर रहा, नहीं सत्य से है गिर रहा॥

११९

मत काल अपना खो वृथा ही, खान में या पान में।
सब झंझटों से दूर रह, मत जा कभी व्याख्यान में॥
मत आ कभी तू क्रोध में, मत भर कभी तू जोश में।
मत लक्ष्य अपना त्याग तू, रह सर्वदा ही होश में

१२०

मत जोर से तू हंस कभी, निन्दा पराई छोड़ दे।
ठट्ठा-हंसी मत कर कभी, झगडा–लड़ाई छोड़ दे॥
मत मार्ग खोटे चल कभी, बे-अर्थ फिरना छोड़ दे।
मत पंच बन, मत चौधरी, अन्याय करना छोड़ दे॥

१२१

सीधा चला जा, इधर को या उधर को मत ताक रे।
खबरें वृथा मत पूछ, गप्पें भी वृथा मत हांक रे॥
मत दोष देखे अन्य के, मत कीर्ति अपनी भाख रे।
रह मग्न अपने आप में, रस आत्म का ही चाख रे॥

१२२

जो कार्य करना उचित है सो कार्य ही कर सर्वदा।
अनुचित न कर कुछ कार्य, हो शास्त्रानुकारी ही सदा॥
मत जा किसी के पास तू बतला न कुछ अपना पता।
सद्गुरु सिवा मत अन्य से कर मेल अथवा मित्रता॥

१२३

कर वाद सद्गुरु से सदा, परमार्थ में कर प्रश्न रे।
परमार्थ का कह वचन तू परमार्थ का कर श्रवण रे॥
शिव-तत्त्व कर चिन्तवन शिव तत्व का धर ध्यान रे।
पूजा न जड़ की कर कभी, आत्म अनुसन्धान रे॥

१२४

जिसको अपेक्षा हो नहीं सो वस्तु तू मत कर ग्रहण।
जिसके विना तू रह सके ले कर न कर तू दुःख सहन॥
संशय न इसमें लेश है, हो त्याग से यदि शान्त मन।
चीजें बहुत त्याग सकता, रख सके है प्राण तन॥

१२५

संसार की यदि वस्तुओं में चित्त तेरा जायगा।
तो चित्त चंचल होय, पर्दा बुद्धि में पड़ जायगा॥
रखते हुए भी आँख तू, बे–आंख का बन जायगा।
सर्वत्र व्यापक ईश भी, नहीं देखने तू पायगा॥

१२६

संसार की सब वस्तुएँ, तेरे लिये जंजीर हैं।
तेरे हृदय को छेदने, पैने भयंकर तीर हैं॥
सब इंद्रियां हैं बहिर्मुख मन भी नहीं स्वाधीन है।
सो शांति अक्षय पाय कैसे जो दुःखी हैं दीन हैं॥

१२७

दर्शन करा निज आंख को सुख शांति के भण्डार का।
मन सदा ही कर मनन, उस सार के भी सार का॥
हो जा सभी में पूर्ण, कर तू ध्यान देव अनन्य का।
सच्चित् परम आनन्द घन, परिपूर्ण एक अजन्म का॥

१२८

शिव को कभी मत भूल तू, सोता हुआ या जागता।
धर ध्यान भगवत् का सदा, बैठा हुआ या भागता॥
मन इन्द्रियां स्वाधीन रख, मत मान तू उनका कहा।
उन का कहा जो मानता, भव सिन्धु में फिरता बहा॥

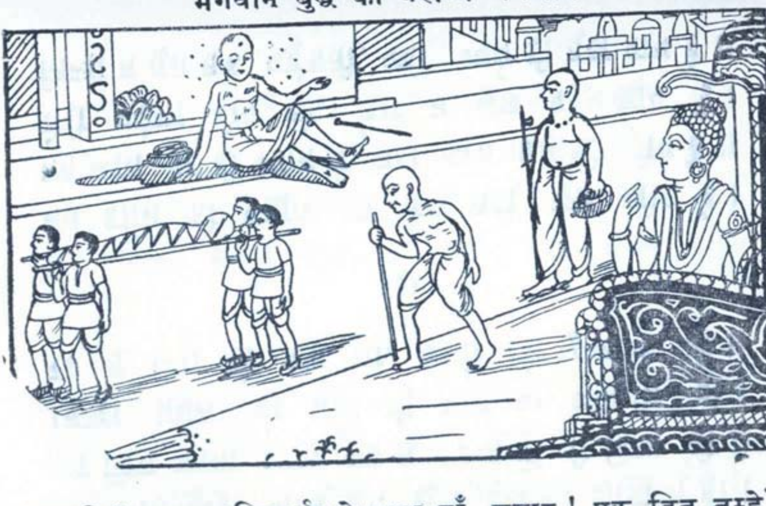
१२९

साधक न इस को भूल तू, तेरा नहीं यह देह है।
धन धाम भी तेरा नहीं तेरा नहीं यह गेह है॥
फंस तू न माया जाल में, तू दिव्य से भी दिव्य है।
मत बन्द काया मांही हो, तेरा न यह कर्तव्य है॥

१३०

साधक सदा रह शुद्ध तू मैला न हो भव मैल से।
पावन परम का ध्यान कर, बाहर निकल जग-जेल से॥
निग्रह सदा कर चित को, बच तू विषय-विष-बेल से।
क्रीड़ा किया कर आत्म में रह दूर सारे खेल से॥

भगवान बुद्ध का वैराग्य विचार



सारथिने कुमार सिद्धार्थ से कहा-हाँ कुमार! एक दिन तुम्हें भी रोगी होना पड़ेगा, वृद्ध होना पड़ेगा, मरना पड़ेगा! यह सुन्दर देह नहीं रहेगी! इस संसार में कोई सदैव नहीं रह सका।

१३१

हो लाभ अथवा हानि हो, सुख दुख या शीतोष्ण हो।
रख चित्त अपना शान्त, मत तू स्वप्न में भी खिन्न हो॥
निन्दा प्रशंसा हो भले ही मान या अपमान हो।
रह तू सदा ही एक सा, बस्ती भले सुनसान हो॥

१३२

मत हानि की परवाह कर तेरा नहीं कुछ खोय है।
मत लाभ पर ही ध्यान दे, नहीं लाभ तुझ को होय है॥
तेरी प्रशंसा होय तो, तेरा न कुछ बढ़ जाय है।
निन्दा न तुझ तक पहुंचती, क्यों व्यर्थ ही दुख पाय है॥

१३३

आनन्दघन है आत्म तू, तिहुँ काल में निजतंत्र है।
सम्बन्ध तुझ में है नहीं, होता न तू परतंत्र है॥
भूमा अचल सब से परम, मरता नहीं है नित्य है।
तेरे सिवा सब है मृषा, तू एक केवल सत्य है॥

१३४

निन्दा प्रशंसा कुछ नहीं, नहीं मान या अपमान है।
ऊँचा तथा नीचा नहीं, सब कल्पना अज्ञान है॥
माया अविद्या का रचा, संसार केवल नाम है।
है तत्व इस में कुछ नहीं, तू तत्व ही सुखधाम है॥

१३५

संसार है धोखाधडी सब कल्पना में है खड़ा।
अज्ञान से है दीखता, खोटा खरा छोटा बड़ा॥
'मैं' और 'मेरा' है मृषा, 'तू' और 'तेरा' कल्पना।
अपना पराया भूल जा, निर्मूल कर दे 'मैं' पना॥

१३६

'सोऽहं' तुही सब से बड़ा है, आप ही तू ब्रह्म है।
भूमा तू ही है एक रस, तुझ में मरण नहीं जन्म है॥
कारण बिना तू है अजन्मा, काल का भी काल है।
निर्दोष है, निःशोक है, स्वच्छन्द मालामाल है॥

१३७

हा शोक! हा हा शोक! माया जाल में तू फंस गया।
जग का खिलौना बन गया, परदेश में है बस गया॥
आत्मा सदा है एक सा, तू भूल अपने को! गया।
माया मरी को मार दे, फिर तू अमर है नित नया॥

१३८

चौरासी का चौसर बिछा, माया तुझे है छल लिया।
स्वराज्य तेरा छीन तुझ को डाल बन्धन में दिया॥
माया नटी को जीत ले, मत दास बन तू आस का।
वैराग्य का धर दाव, पासा फैक तू अभ्यास का॥

१३९

मन है प्रमादी अति बली, चालें बहुत सी जानता।
वो ही उसे बस कर सके, जो युक्तियां पहिचानता॥
मन को प्रथम स्वाधीन कर, यदि मुक्त होना चाहता।
मन को बिना वश में किये, नहीं सिद्धि कोई पावता॥

१४०

वैराग्य बख्तर मात्र में, विद्या खड्ग ले हाथ में।
झण्डा प्रणव, श्रद्धा ध्वजा, सामग्री पूरी साथ में॥
आनन्दपुर के जीतने को कर यहां से कूच रे।
उत्साह से बढ़ता चला जा, कर न कुछ संकोच रे॥

सत्य प्राप्तिके लिये पावन प्रयाण



अपने आत्म तत्व को जानने के लिये वैराग्य पूर्वक निश्चय एवं श्रद्धा को सहारा बना कर उत्साह पूर्वक चल पड़।

१४१

निःशंक हो कर कूच कर, मत मार्ग पे तू रुक कहीं ।
कर तू निरन्तर यम नियम, पीछे कभी भी हट नहीं ॥
निर्भय सदा कर योग तू, निज लक्ष्य को मत तज कभी ।
घबरा नहीं जो विघ्न आवें, सहन कर ले तू सभी ॥

१४२

पीछे न हट सन्मार्ग से, लग तू निरन्तर योग में ।
निग्रह सदा कर चित्त, मत जाने उसे दे भोग में ॥
संयम सदा कर नियम से, कर बुद्धि को एकाग्र रे ।
विक्षेप कुछ आने न दे, शम शान्ति समता धार रे ॥

भीष्म पितामह



भीष्मपिता की भांति दृढ़ प्रतिज्ञ हो कर योग करें और जब तक लक्ष्य प्राप्ति न हों विघ्नों की परवाह न करते हुए आगे बढ़ें और आत्मशांति प्राप्त कर के ही रहें !

१४३

जब योग के अभ्यास से, तब चित्त थिर हो जायगा।
होगी समाधी सिद्ध तब तू बोध सम्यक् पायगा॥
माया–नटी भग जाय, संशय दूर सब हो जायगा।
अल्पज्ञ तब तू जीव ही, सर्वज्ञ शिव हो जायगा॥

१४४

करता निरन्तर युद्ध रह, जब तक न तेरी हो विजय।
संग्राम कर तू अन्त तक, जब तक न पूरा हो अभय॥
विश्वास रख तू आप पर, सन्तुष्ट रह, कर प्राप्त जय।
विश्वास रख गुरु शास्त्र में, स्वच्छन्द हैं, तू बोधमय॥

'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं'



जिसे वेद आदि शास्त्रों एवं गुरु में श्रद्धा होती है वे ही अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का उपयोग कर अर्जुन की तरह आत्म तत्व को जान जाते हैं।

१४५

कर प्रार्थना गुरुदेव से, 'स्वामिन् अनुग्रह कीजिये।
माया अविद्या दूर किजै, शान्ति सम्यक् दीजिये॥
भव सिन्धु में हूँ डूबता, गोते न खाने दीजिये।
है नाव मेरी डूबती, भव पार उसको कीजिये॥

१४६

हे देव बन्धन में पड़ा हूं, मुक्त मुझको कीजिये।
निर्भय मुझे कर दीजिये, सुख शान्ति अविचल दीजिये॥
विद्या मुझे प्रभु! दीजिये, अज्ञान–तम हर लीजिये।
करता विनय हूं आप सम्यक् ज्ञान मुझको दीजिये॥



भगवान श्री कृष्न जिनके उपदेश से अर्जुन का मोह नष्ट हुआ और वह ज्ञान को प्राप्त हुआ।

१४७

ऐसी कृपा प्रभु ! कीजिये परतन्त्रता से मुक्त होउं ।
होऊं अजन्मा अमर मैं, सुख शान्ति से संयुक्त होउं ॥
मैं आपके ही हूं शरण, करुणा दयानिधि कीजिये ।
मन कर्म वाणी से शरण हूं, सीख सच्ची दीजिये ॥

१४८

मैं आपका हूँ आपके ही आ पडा हूँ अब शरण ।
करता नमन हूँ फिर नमन, बहु बार करता हु नमन ॥
वह मार्ग प्रभु ! दिखलाइये, जिससे न होवे फिर मरण ।
परिपूर्ण हूँ स्वछन्द हूँ निश्चिन्त हूं, धारु न तन ॥

१४९

संसार से जाउं निकल, ऐसी दया अब कीजिये ।
मन के अंधेरे को जरा भी, अब न रहने दीजिये ॥
उपदेश सच्चा दीजिये, सब मर्म बतला दीजिये ।
मर्म प्रभु ! कर दीजिये, संशय सभी हर लीजिये ॥

१५०

सद्गुरु दयानिधि तब तुझे, उपदेश सच्चा देयंगे ।
अज्ञान तेरा दूर करके, सत्य बतला देयंगे ॥
सत्तत्व चारों वेदका, अपरोक्ष सिखला देयंगे, ।
प्रत्यक्ष बतला देयंगे, सुस्पष्ट दिखला देयंगे ॥

१८१

परमार्थ पावन सत्य का, उपदेश सुन तू कान दे।
विश्वास श्रद्धा भक्ति से, आह्लाद से तू ध्यान दे।
एकाग्र मन से कर ग्रहण उपदेश बुद्धि कुशाग्र से।
अति सूक्ष्म से भी सूक्ष्म अति पहचान शुद्ध विचार से॥

१८२

जो सूक्ष्म दर्शी होय सो ही तत्व है पहचानता।
श्रद्धा जिसे है वेदपर, सो मर्म केवल जानता॥
हो बुद्धि जिसकी तीव्र, संशय दूर जो कर डालता।
हो बुद्धि जिसकी शुद्ध सो ही बोध सम्यक् जानता॥

१८३

वैराग्य और विचार से, निज बोध को परिपूर्ण कर।
सद्वस्तुका आदर सहित, दिन रात अनुसंधान कर॥
जो कुछ श्रवण गुरु से किया, एकाग्र मन से मनन कर।
करता मनन रह तब तलक, जब तक न होवे पक्कतर।

१८४

जब पक्क हो जावे मनन, कर स्वंय अनुभव तत्व का।
कर ध्यान बारंबर, सच्चा मार्ग यह ही सत्य का॥
बिन ध्यान के नहीं तत्त्व तेरे हाथ सम्यक् आयगा।
होगा निरंतर ध्यान तब ही, बोध सम्यक् पायगा॥

१५५

कुटिया बना एकान्त में, अभ्याभ करने के लिये।
जो योग के हित युक्त हो, अरु युक्त तन मन के लिये॥
रख शेष केवल ब्रह्म, सारे दृश्य का तू त्याग कर।
हो स्वस्थ कुटिया मांहि केवल ब्रह्म में अनुराग कर॥

१५६

रख शेष केवल ब्रह्म, सारे विश्व का कर बांध दे।
निज चित्त को चैतन्य का ही, मात्र चखने स्वाद दे॥
नानापने को त्याग कर, एकत्वता ही साध रे।
कर योग को अभ्यास, मत कर अन्य कुछ भी याद रे॥



सांख्य समान ज्ञान नहीं, योग समान बल नहीं। संत ज्ञानेश्वरने योगबल से पाडे के मुँह से भी वेदमंत्रोच्चार करा लिया। अतः आत्मचिंतन करते हुए योगमें आरूढ हो।

१५७

ले मदद प्रत्याहार की, मन रोक वश इन्द्रियां।
एकत्व लख सर्वत्र ही, जावें जहां मन वृत्तियां॥
मत ध्यान को दे टूटने, एकत्र कर सब वृत्तियां।
एकत्र से कर पूर्ण मन, कर्मेन्द्रियां ज्ञानेन्द्रियां॥

१५८

एकत्व में मन चित्त की, सब वृत्तियों को जोड़ दे।
निष्क्रिय तथा निःसंग नाता इन्द्रियों से तोड़ दे॥
आनंदमय तब ब्रह्म विद्या दर्श आपना देयगी।
चिन्मय समाधी मांहिं चिन्मय ही तुझे कर लेयगी॥

१५९

सब में निरन्तर भाव कर, तू सर्वदा एकत्व का।
निःसीम का, चैतन्य का, अव्यय निरामय तत्व का॥
मन में तथा ही कर्म में, कर लक्ष्य अक्षय एकता।
अद्वैतता दृढ़ कर सदा, निर्मूल कर दे द्वैतता॥

१६०

मैं ब्रह्म शाश्वत मुक्त सन्तत शुद्ध हुं निज तन्त्र हूं।
सब में बस हूं एक रस, परिपूर्ण मैं सवर्त्र हूं॥
अव्यय तथा निर्दोष, माया से परे हूं, सत्य हूं।
कारण रहित, सीमा रहित, केवल अजन्मा नित्य हूं॥

१६१

मैं ब्रह्म हूं, परमात्मा हूं, मैं वार हुं मैं पार हुं।
मैं हुं स्वयं ही सिद्ध, चिन्मय सार का भी सार हुं।
मेरे सिवा ना कुछ हैं, मैं सर्व का आधार हुं।
अज हुं, अजर हुं, अमर हुं, सन्मात्र हुं, चिन्मात्र हुं॥

१६२

ऐसे सदा कर चिन्तवन, तू योग में आरूढ हो।
निग्रह किया कर चित्त का, जब तक न ज्ञानारुढ हो।
भय चित्त कर चिन्मात्र में, सन्मात्र में तल्लीन हो।
मत भेद किंचित् देख तू, एकत्व जल की मीन हो॥

१६३

कर तू समाधी दिवस निशि आदर सहित सत्कार से।
मन कर्म वाणी से तथा चिरकाल तक अति प्यार से॥
निर्मूल कर दे विघ्न सारे, तात! सर्व प्रकार से।
कर योग सच्चा प्राप्त, हो जा दूर इस संसार से॥

१६४

करता समाधी रह सदा, अति सूक्ष्म से भी सूक्ष्म तू।
कर के समाधी सिद्ध चढ़ जा ऊर्ध्व से भी उर्ध्व तू॥
भूमा अचल में वास कर, भूमा स्वयं ही ब्रह्म हो।
कूटस्थ व्यापी सर्व में, चैतन्य हो परमात्मा हो॥

१६५

है ब्रह्म तू ही शान्तिमय, चिन्मय तथा भर पूर है।
सब का प्रकाशक सर्वमय नहीं पास है नहीं दूर है॥
अविनाशी तीनों काल में, निर्मोह है निःशोक है।
माया अंधेरे से परे, तिहुं लोक का आलोक है॥

१६६

है शुद्ध नित्य प्रबुद्ध तू, तीनों अवस्था से परे।
शिव एक तुर्यातीत, भव से मुक्त माया से परे॥
पर से परे सद्ब्रह्म अक्षय, शान्त है निर्बन्ध है।
तीनों गुणों से है परे, संतृप्त है, निर्द्वंद्व है॥

१६७

चेतन अचेतन से परे, केवल परे अद्वैत है।
है नित्य का भी नित्य तू, शिव एक निरुपम सत्य है॥
ओंकार, सर्वाधार, माया पार सर्वातीत है।
आत्मा प्रत्यक्, तत्सत् तथा चिन्मात्र मायातीत है॥

१६८

श्रुति मातु की वाणी विमल, सुनकर मुमुक्षु जग गया।
संसार को मिथ्या समझकर, योग में सो लग गया॥
चिरकाल तक अभ्यास कर के तत्व अपना पाय के।
अनुभव स्वंय कहने लगा इस भांति से चिल्लाय के॥

१६९

नहीं हाड़ हुं, नहीं मांस हुं, मज्जा नहीं, नहीं रक्त हुं।
नहीं भेद हुं, नहीं नाडियां, नही वात हुं, नहीं पित्त हुं॥
मैं देह नहीं तिहुं काल में मेरा नहीं यह देह है।
"मैं" ब्रह्म हुं 'मैं' ब्रह्म हुं, इस में नहीं संदेह है॥

१७०

श्रोता नहीं, नहीं श्रोता ही, मैं हुं नहीं श्रोतव्य भी।
छूता नहीं, नहीं हूं त्वचा, मैं हुं न छूने योग्य भी॥
द्दष्टा नहीं नहीं चक्षु मैं, मुझ में न रञ्चक द्दश्य है।
'मैं ब्रह्म हुं' 'मैं ब्रह्म हुं' यह बात सम्यक् सत्य है॥

१७१

चखता नहीं, नहीं जीव मैं, मुझ में नहीं है स्वाद भी।
नहीं सूंघ ता नहीं ना कहुं, नहीं मैं गंध मुझमें गंध की॥
वक्ता न मैं वाणी न मैं, मुझ में नहीं वक्तव्य है।
'मैं ब्रह्म हूँ, 'मैं ब्रह्म हूँ' यह वाक्य ही मन्तव्य है॥

१७२

पकड़ नहीं, नहीं हाथ मैं, मुझ को न कुछ भी ग्राह्य है।
चलता न मैं नहिं पैर हुं, मेरी न कोई राह है॥
नहीं मोह लूं, न उपस्थ हूँ मुझ में नहीं आनन्द है।
'मैं ब्रह्म हुं, मैं ब्रह्म हुं' कहता यही श्रुति छन्द है॥

१७३

मैं ब्रह्मचारी हुं नहीं जो पाठ वेदों का करुं।
मैं नहीं गृही जो घर बसाऊँ या अतिथि-सेवा करुं॥
नहीं हुं वनी जो तप करुं, नहीं मैं यती जो दूं अभय।
'मैं ब्रह्म हुं, मैं ब्रह्म हुं, सच्चित् तथा आनन्दमय॥

१७४

'मैं देह हुं' संकल्प यह अन्ततः करण जावे कहा।
मैं देह हुं संकल्प यह संसार कहलाता महा॥
मै देह हूं संकल्प यह ही बन्ध कहलावे यहां।
मैं ब्रह्म हूं मैं ब्रह्म हुं यह देह मुझ में है कहां॥

१७५

'मैं देह हु संकल्प ऐसा, दुःख सो कहलाय है।
मैं देह हुं संकल्प यह ही नरक माना जाय है।
मैं देह हूं संकल्प यह ही जगत है कहलावता।
'मैं ब्रह्म हुं, मैं ब्रह्म हु' इस देह से नहीं वासता॥

१७६

'मैं देह हुं' यह ज्ञान चिज्जड-ग्रन्थि मानी जाय है।
'मैं देह हुं' यह जानना, अज्ञान सो कहलाय है॥
'मैं देह हुं' यह ज्ञान ही कहलाय है नास्तिकपना।
'मैं ब्रह्म हु' 'मैं ब्रह्म हुं मुझ में नहीं है मैं पना॥

१७७

मैं देह हुं इस बुद्धि का ही तो अविद्या नाम है।
मैं देह हुं इस बुद्धि में ही द्वैत अरु परिणाम है॥
मैं देह हुं इस बुद्धि वाला, जीव संज्ञा पावता।
'मैं ब्रह्म हुं मैं ब्रह्म हु' नहीं देह का मुझ में पता॥

१७८

मैं देह हुं इस भान से ही भासती है अल्पता।
मैं देह हुं इस भान में कल्पी हुई सर्वज्ञता॥
'मैं देह हुं इस भान में रहती सदा है अस्मिता।
'मैं ब्रह्म हुं मैं ब्रह्म हुं' मुझ में नहीं है अल्पता॥

जन्म मृत्यु मुझमें नहीं है, देह में है।

मैं देह नहीं हूं,

जन्म-वृद्धि-मृत्यु मेरी नहीं है, देह की हैं। मैं इनसे परे हूँ।





देहकी शिशु अवस्था किशोर अवस्था जवान अवस्था

देहकी विभिन्न अवस्थाओं का साक्षी चेतन आत्मा हूं।

१७९

मैं देह हुं संकल्प यह सब पातकों का मूल है।
मैं देह हुं संकल्प यह ही तो भयानक शूल है॥
मैं देह हुं संकल्प यह सब व्याधियों का पुंज है।
'मैं ब्रह्म हुं मैं ब्रह्म हुं' मुझ में न कोई रंज है॥

१८०

'मैं देह हूँ' यह मानना सब से बड़ा यह पाप है।
निष्पाप को पापी बना देता महा सन्ताप है॥
सब पाप इसके पुत्र हैं सब पाप का यह बाप है।
'मैं ब्रह्म हुं मैं ब्रह्म हुं' यह जाप उत्तम जाप है॥

मृत्यु!...मगर किसकी?...मेरी नहीं।



सुख, दुख, रोग, तंदुरस्ती, जन्म, जवानी, बुढापा सब भोग कर अन्तमें मृत्यु हुई। मगर मेरी नहीं, इस शरीर की। मैं तो कभी जन्मा नहीं। इन सब अवस्थाओं का साक्षी चेतन आत्मा हूँ मैं। मैं ब्रह्म हूँ। मैं देह नहीं हूँ।

१८१

'मैं देह हुं, यह मानते ही आ दबाता, काम है।
निष्काम को कामी बनाता, छीन ले आराम है॥
मर्कट बने नर काम वश, पाता नहीं विश्राम है।
'मैं ब्रह्म हुं मैं ब्रह्म हुं यह मंत्र सुख का धाम है॥

१८२

मैं देह हुं यह मानने से, सिर चढे आ क्रोध है।
गुरु शास्त्र सब को भूल कर हो जाय नर निर्बोध है॥
'मैं कौन हुं' क्या कर रहा, रहता न कुछ भी बोध है।
मैं ब्रह्म हुं, मैं ब्रह्म हुं करता यही निज शोध है॥

१८३

'मैं देह हुं' यह मानने से लोभ लेता दाव है।
पण्डित, गुणी शास्त्रज्ञ की भी खोय देता आब है॥
वश लोभ के हो। सूझता भी, होय जाता अन्ध है।
'मैं ब्रह्म हुं मैं बह्म हुं' यह मन्त्र काटत द्वन्द्व है॥

१८४

'मैं देह हुं' इस ज्ञान से उत्पन्न होता मोह है।
होता किसी से राग है, होता किसी से द्रोह है॥
होता इसीसे पाप है, होता इसीसे पुण्य है।
'मैं ब्रह्म हुं, मैं ब्रह्म हुं' यह जाप ही जग मान्य है॥

१८५

मैं देह हुं इस ज्ञान से, नर होय मदसे चूर है।
करुणा दया को छोड़कर, हो जाय कामी क्रूर है॥
अवगुण बनाता मित्र, रहता शुभ गुणों से दूर है।
'मैं ब्रह्म हुं मैं ब्रह्म हुं' मद को करे कर्पूर है॥

१८६

मैं देह हुं इस ज्ञान से उत्पन्न मत्सर होय है।
वश होय जिसके मूढ पर की सम्पदा लख रोय है॥
बे अर्थ करता वैर है, बे अर्थ ही होता दुखी।
'मैं ब्रह्म हुं, मैं ब्रह्म हु' यह मन्त्र करता है सुखी॥

१८७

मैं देह हूं इस ज्ञान से उत्पन्न चिन्ता होय है।
जलता रहे है मूढ क्षण नहीं, नींद सुख की सोय है॥
चिन्ता–भुजंगिन नहिं डसा, नहिं जीव ऐसा कोय है।
'मैं ब्रह्म हूं, मैं ब्रह्म हु' यह मन्त्र चिन्ता खोय है॥

१८८

'मैं देह हु' इस ज्ञान से ईर्ष्या बढ़े है रात दिन।
ज्यों खोज करती है दुखी, नहीं चैन देती एक क्षण॥
दीखे कभी लुक जाय है चलती नहीं है यह बला।
'मैं बह्म हुं, मैं ब्रह्म हु' जपना यही सबसे भला॥

भारत का योगी और सम्राट सिकन्दर



भारत का योगी सिकन्दर को कहता है, "तुम मेरा क्या बिगाड़ सकते हो ? मैं देह नहीं हुं। मुझमें जन्म-मरण नहीं है। मुझे आग जला नहीं सकती। मैं अजर अमर आत्मा हूँ। मैं ने अपने आप को जान लिया है।"

१८९

मुझ में न तीनों देह हैं, तीनों अवस्थाएं नहीं।
मुझ में नहीं बालकपना, यौवन बुढापा है नहीं ॥
जन्मूं नहीं मरता नहीं होता नहीं मैं बेश-कम।
'मैं ब्रह्म हूं मैं ब्रह्म हुं' तीहुं काल में हुं एक सम ॥

१९०

अभ्यास करता कान से, तब शब्द सुनने में लगूं।
रोता भयानक शब्द सुन, रोचक सुनूं हँसने लगूं ॥
मेरा नहीं है कान, सुनता न कोई घोष हूं।
मैं ब्रह्म हुं मैं पूर्ण हुं मैं पूर्ण हुं मैं ठोस हूं ॥

१९१

जब मेल करता आँख से तब रूप नाना भासते।
सुन्दर असुन्दर रूप दोनों, मोह में हैं फाँसते॥
जब मूंद लेता आँख तो कुछ भी नहीं है भासता।
मैं ब्रह्म हूं, मैं ब्रह्म हूं' नहीं आंख से कुछ वासता॥

१९२

करता त्वचा से मेल जब, शीतोष्ण करता हूं ग्रहण।
अनुकूल पाकर हर्षता, प्रतिकूल लख करता रुदन॥
जब है त्वचा हो जावती, नहिं भासता कोमल कठिन।
'मैं ब्रह्म हूं मैं ब्रह्म हुं' यह ही भला करना मनन॥

१९३

सम्बन्ध होता जीभ से तब स्वाद में लग जावता।
कड़वा कसैला नहिं रुचे, मीठा सलोना भावता॥
जिह्वा जली बहु योनियों में जन्म दे कीन्हा दुखी।
'मैं ब्रह्म हुं, मैं ब्रह्म हुं' जप कर हुआ हुं मैं सुखी॥

१९४

इस नाक से सम्बन्ध करके दम हुआ था नाक में।
वर्षों तलक फिरता रहा, श्रक चन्दनादिक-ताक में॥
पावन परम गन्दा हुआ, मैं राग करके गन्ध में।
मैं ब्रह्म हुं जब से जपा, तब से हुआ निर्द्वन्द्व मैं॥

१९५

मनने बनाया विश्व यह, मन ही रचा यह देह है ।
मन मात्र कारण दुख का, इस मे नहीं सन्देह है॥
मन है बना संकल्प का, संकल्प क्या है ! कल्पना !
मैं ब्रह्म हु मैं ब्रह्म हुं, संकल्प मुझ में अल्पना ॥

१९६

मन का रचा आकाश, वायु, तेज जल अरु भूमि है।
मन चित्त, मन अन्तःकरण, मन ही कहाता बुद्धि है ॥
मन ही कहाता जीव है, मन ही कहाता बन्ध है।
मैं ब्रह्म हु मैं ब्रह्म हु मन से न मम सम्बन्ध है ॥

१९७

जो एक वस्तु होय है, सो हो सके नाना नहीं ।
जब एक केवल ब्रह्म है, तो भेद फिर कैसा कहीं ॥
देखन सुनन में आय जो, नहीं ब्रह्म से सो अन्य है।
मैं ब्रह्म हु मैं ब्रह्म हु; वह ब्रह्म एक अनन्य है ॥

१९८

आनन्द हुं, परिपूर्ण हुं, चैतन्य अक्षय बोध हुं।
पर से परे अद्वैत हुं, निर्दोष हुं, बिनु क्रोध हूं ॥
संसार के सुख दुःख मुझ निःसंग को छूते नहीं ।
'मैं ब्रह्म हुं मैं ब्रह्म हु' इस में जरा संशय नहीं ॥

१९९

जब दुःख मुझ में है नहीं, सुख रूप ही मैं शेष हुं।
चिद्रुप हुं प्रतिभानयुत नहीं, न्यून, नाहीं विशेष हुं॥
आता नहीं जाता नहीं, मरता नहीं, नहीं जन्मता।
मैं ब्रह्म हुं मैं ब्रह्म हुं मैं सत्यता मैं नित्यता॥

२००

ब्रह्मात्म के एकत्व में, जब बुद्धि लय हो जाय है।
ज्यों नौन-डेली सिन्धु में त्यों ही वहां खो जाय है॥
रहता वहां कुछ भी नहीं सब ब्रह्म रहता शेष है।
सो ब्रह्म मैं हूं ब्रह्म सो इस में न संशय लेश है॥

२०१

जब बुद्धि लय हो जाय है चेष्टा न कोई होय है।
क्या बाहरी क्या भीतरी होती क्रिया नहीं कोय है॥
जैसा वहां आनन्द है, अनुमान हो सकता नहीं।
मैं ब्रह्म हूं मैं ब्रह्म हुं इस में जरा धोखा नहीं॥

२०२

आत्मा सदा भरपूर सागर है हिलोरे ले रहा।
नहीं जान सकता मन उसे नहीं जाय वाणी से कहा॥
ओला यथा गिर सिन्धु में जिस ब्रह्म में मन होय लय।
सो ब्रह्म मैं हूं एक रस सच्चित् तथा आनन्द मय॥

२०३

जब बुद्धि लय हो ब्रह्म में तब विश्व यह भग जाय है।
चलता पता उसका नहीं, किस कोण में घुस जाय है॥
हो जाय है जिस ब्रह्म में, यह विश्व सारा लापता।
सो ब्रह्म मैं अद्वैत हुं मुझ में नहीं है द्वैतता॥

२०४

क्या ग्राह्य है क्या त्याज्य है नहीं कल्पना यह ब्रह्म में।
अनुकूलता प्रतिकूलता भी नहीं कल्पना कुछ ब्रह्म में॥
सीमा रहित सागर सुधा का ब्रह्म ही परिपूर्ण है।
सो ब्रह्म ही मैं आप हुं मेरे सिवा नहीं अन्य है॥

२०५

गुरु वाह वा श्रुति वाह, वाह! भव सिन्धु से काढ़ा मुझे।
मम नाम के मल्लाह बन, संसार से तारा मुझे॥
मैं जानता था देह हुं, थी भूल मैं वे अंग है।
बेलिंग हुं निर्दोष हुं, कूटस्थ हुं निःसंग हुं॥

२०६

रागादि मुझ में है नहों, शाश्वत अविद्या मुक्त हुं।
मैं कार्य कारण से रहित, अक्षय निरामय तत्व हुं॥
कर्ता नहीं भोक्ता नहीं, हूं निर्विकारी अक्रिय।
शुच शुद्ध बोध स्वरूप हुं, केवल सदा शिव अव्यय॥

२०७

निःसंग हुं, परिपूर्ण हुं, बोधात्म हुं निर्द्वन्द्व हुं।
माया अविद्या से परे स्वच्छन्द परमानन्द हुं॥
यह भी नहीं वह भी नहीं, नहिं पास हुं नहिं दूर हुं।
बाहर नहीं भीतर नहीं, सर्वत्र ही भरपूर हुं॥

२०८

उपमारहित हुं मैं सनातन, कल्पना से हुं परे।
निर्भय हुं, मैं एक रस आद्यन्त स मैं हुं परे॥
निर्मोह हुं, निःशोक हुं, निर्द्वंद्व चिन्ता से परे।
तीनो गुणों से हुं रहित, निर्विघ्न माया से परे॥

२०९

नर कान्त नारायण महत् त्रिपुरान्त अच्युत एक हूं।
सर्वेश साक्षी पुरुष मैं ही एक और अनेक हूं॥
ममता अहंता से रहित, निर्लेप ईश्वर शून्य हूं।
निःसंग द्रष्टा सर्व का हूं शुद्ध सब से भिन्न हूं॥

२१०

मैं सर्व भूतों में टिका, भूतों सभी से मैं जुदा।
ज्ञानात्म अन्तर बाह्य हूं मैं बाह्य भीतर से जुदा॥
भोक्ता तथा हुं भोग्य मैं ही भोग्य भोक्ता से पृथक्।
पहिले पृथक् था दीखता, सो अब नही कुछ है पृथक्॥

२११

बेतोड़ मुझ सुख सिन्धु में ये विश्व लहरें अनगिनत।
माया मरुत के वेग से, उत्पन्न भय होति रहत॥
है काल जैसे एक उस में जोड़ है नहिं तोड़ है।
अज्ञानियों की कल्पनाओं में हजारो क्रोड़ है॥

२१२

त्यों एक मुझ बेतोड में रंचक नहीं कुछ भेद है।
अज्ञानियों ने कल्प लीं, लाखों उपाधी खेद है!
आरोप के अध्यास से, आश्रय न दूषित होय है।
अविवेकियों की दृष्टि से नहिं हानि मेरी काेय है॥



जैसे कुम्हार मिट्टी को अलग अलग वस्तुएँ बनाता है तो नाम, रूप, रंग के कारण वे अलग अलग कहलाती है, बाकी-है वह सब मिट्टी ही। मिट्टी ही सब में अनुस्यूत है। वैसे ही ब्रह्म ही अज्ञानवश नानारूपों में भासित हो रहा है।

२१३

ज्यों भूमि ऊसर कभी कभी मरु–जल ना गीला कर सके।
त्यों ठोस भूमा तत्त्व मुझ में विषय कुछ ना कर सके॥
आकाश सम निर्लेप मैं नहीं धूल से संयुक्त हूँ।
अदित्य सम निःसंग मैं धर्मादि से नहीं लिप्त हूँ॥

२१४

विन्ध्यादि सम मैं हुं अचल, तृणादि से नहीं हिल सकूँ।
ज्यों सिन्धु हूं गम्भीर मैं मर्यादा से नहीं टल सकूँ॥
सम्बन्ध जैसे बादलों से पक्षीयों का है नहीं।
सम्बन्ध मेरा देह से इस भाँति होता है नहीं॥

२१५

यों तृप्त हो मन में मुमुक्षु, मुक्त संशय मुक्त भय।
जग में विचरने लग गया सब प्राणियों को दी अभय॥
अशरीर भी अशरीर सम, व्यवहार करने लग गया।
प्रारब्ध जब क्षय हो गया, तब लीन भूमा में भया॥

२१६

श्रुति टेर सुन दे ध्यान भोला! होश में आ, चेत जा।
बचपन गया, यौवन चला, आया बुढ़ापा चेत जा॥
है आ रहा यम का बुलावे पै बुलावा चेत जा।
क्या ठीक है दम जाय के आया न आया चेत जा॥

२१७

जो केश काले भ्रमर थे, गाले रुई के बन गये।
थे दांत हाथी सम मजबूत गिरने लग गये॥
आँखे चुरा आँखे गई है, दृष्टि मन्दी पड़ गयी।
मुख हो गया है पोपला, तृष्णा अधिक है बढ़ गयी॥

२१८

नहीं कान देते काम अब ऊँचा बहुत सुनने लगे।
पग डगमगाते चालते, हैं हाथ भी हिलने लगे॥
काया गली झुर्री पड़ी, हड्डी हुई है खोखली।
ज्यों जोंक चिन्ता सर्पिणीने रक्त चर्वी सोख ली॥

ईश्वरभजन करें तो भक्त प्रह्लाद की तरह!



भक्त प्रह्लाद अपने पिता के भयंकर विरोधों की परवाह न करते हुए अपने साथियों सहित ईश्वरभजन में तन्मय है।

२१९

बहु काल तक सोया कीया, अब मोह निद्रा त्याग रे।
सब कामनाएँ त्याग कर, ईश्वर भजन में लाग रे॥
संसार जलती आग है, इस आग से बच भाग रे।
सब का भरोसा छोड़ दे, कर ईश में अनुराग रे॥

२२०

हैं भोग सब घर रोग के, मत भोग में आसक्त हो।
चिन्ता कर मत अन्य की विश्वेश में अनुरक्त हो॥
संसार में सुख है नहीं जगदीश भजकर हो सुखी।
संसार की आशा करें, वे मूढ़ होते हैं दुखी॥

ॐ ॐ ॐ



* अमृत–वाणी *

(परमपूज्य संतश्री आशारामजी महाराज)

० कई लोग सोचते हैं कि ज्ञान प्राप्त करना या ईश्वर–भजन करना तो साधुओं का ही काम है, हमारा नहीं। तो क्या भगवानश्री राम के गुरु महर्षि वशिष्ठ एवं श्रीकृष्ण के गुरु संदीपन ऋषि गृहस्थी नहीं थे? आत्म-साक्षात्कार किये हुए अनेक गृहस्थी महापुरुषों के प्रमाण शास्त्रों में मिलते हैं।

० स्वयं तत्व विचार किये बिना आत्मज्ञान नहीं होगा। मां बच्चे को भोजन खिलाती है, परन्तु उसे चबाना और पचाना तो बच्चे को ही पड़ेगा।

० भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के साथ ही थे फिर भी अर्जुन का शोक और मोह दूर नहीं हुआ। वह तो तभी दूर हुआ जब अर्जुन ने श्रद्धापूर्वक गीतामृत का तत्वरूप से पान किया और उसे पचाया।

० स्वयं को देह मानना यही सबसे बड़ी निर्धनता, अज्ञान और पाप है।

० सतत आत्मविचार करो। मैं देह नहीं हूँ, मन नहीं

हूँ, बुद्धि नहीं हूँ। मैं इनसे परे–इन सबका प्रकाशक सत्‌चित्–आनन्द–स्वरूप आत्मा हूँ। मुझे भय–शोक–दुख का लेश भी छू नहीं सकता।

० आत्म शांति की प्राप्ति का समय थोड़ा है। मार्ग अटपटा है। बड़े बड़े अपने को समझदार माननेवाले तीसमार–खाँ भी मार्ग की भूल–भुलैया में से निकलने से रह जाते हैं। वो जिज्ञासु धन्य हैं जो वास्तविक तत्ववेत्ताओं की छाया में पहुँच जाते हैं।

० जिसको ईश्वर–प्राप्ति के मार्ग पर चलना है उसे निंदा–स्तुति, मान–अपमान तो सहन करने ही पड़ेंगे।

० जो शांतचित्त होकर तत्वज्ञान का श्रवण करता है, उसका पुण्य तो अमाप है। श्रुति में आता है कि उसने सारा दान कर दिया, सब तीर्थों में स्नान कर लिया, सब पितरों को तृप्त कर दिया जिसने एक क्षण भी स्थिर चित्त से ब्रह्मवेत्ताओं के मुखारविन्द से आत्मज्ञान का उपदेश श्रवण किया है।

० सच्चे संत आशीर्वाद या श्राप नहीं देते, लेकिन सच्ची श्रद्धा हो तो अनायास उनके हृदय से आशीर्वाद निकल जाता है।

० भोग भोगने से इन्द्रियाँ कभी तृप्त नहीं होती। किन्तु सच्चे संतों की कृपा से यदि इन्द्रियातीत आनंद की झलक मिल जाय तो इन्द्रियों द्वारा वैषयिक सुख भोगने में आनन्द मानकर जीवन व्यर्थ गँवाने की भूल समझ में आ जाती है। इसलिये सच्चे संतों के चरणों में जाओ।

० आत्मज्ञान रूपी अमृत वचनों का श्रवण-यह उत्तम है, परन्तु आत्मवेत्ता महापुरूष के सान्निध्य में रहकर उसका पान करना एवं पचाना-यह स्वर्ण अवसर अत्यंत पुण्यशाली व्यक्ति को ही प्राप्त होता है।

० मनुष्य जन्म दुर्लभ है और तत्वज्ञानी महापुरुष का संग

मिलना भी दुर्लभ है, परंतु इन तीनों का मेल एक साथ जिसके जीवन में हो जाता है उसके सब भव बन्धन टूट जाते हैं।

० जिसका मन परम तत्व में लीन हो गया है, ऐसे संतों के दर्शन मात्र से हृदय में अनुपम शांति छा जाती है।

० आत्मज्ञान प्राप्त करना यानी आत्मसाक्षात्कार करना, यह जगत में बड़े से बड़ा कार्य है।

'उसने जहाँ में बड़ी बात कर ली
जिसने अपने आप से मुलाकात कर ली।'

ॐ ॐ ॐ

प. पू. आशारामजी महाराज–संक्षिप्त परिचय

साबरमती नदी के पवित्र तट पर मोटेरा आश्रम में एक सफेद वस्त्रधारी संत के दर्शन होते हैं जिन्हें लोग संत श्री आशारामजी महाराज के नाम से पुकारते हैं। उनके दर्शन मात्र से ही हृदय में अलौकिक शान्ति का अनुभव होता है।

'पूज्यश्री' का जन्म १७ अप्रेल सन १९४१ में सिंध प्रान्त के बेराणी गाँव के सद्‌भाग्यशाली नगरसेठ श्री थाहुमल सीरूमलानी के पवित्र गृह में हुआ था। 'पूज्यश्री' के जन्म मात्र के तुरन्त पश्चात ही कई अलौकिक घटनाएँ घटी और कुटुम्ब की समृद्धि व सुखशान्तिमें भी अभूतपूर्व वृद्धि होने लगी थी। पूज्यश्री के हावभाव, अन्य क्रियाएं एवं तेजोमय

मुखमण्डल देखकर तीन वर्ष की अवस्था में ही उनके कुल-गुरु ने भविष्यवाणी कर दी थी कि 'यह बालक भविष्य में महान् सन्त बनकर कई लोगों को जन्म-मरण के कष्टों से छुड़ाएगा।'

अपनी युवावस्था में ही स्वामीजी ने गृहत्याग कर हिमालय व आबू की गहन गुफाओं एवं नर्मदा के पवित्र तट पर कठिन तपस्या कर आत्म-साक्षात्कार किया और आज उसी पहाड़ों एवं घने जङ्गलों से प्राप्त की हुई अमूल्य आध्यात्मिक अमृतनिधि (खज़ाना) खुले हस्त साबरमती के पवित्र तट पर संसार के तापों से तपित-थकित लोगों में बाँट रहे है।

— संकलनकर्ता

– पुस्तक प्राप्ति के प्रमुख स्थल –

१. संत श्री आशाराम आश्रम, (साबरमती नदी के किनारे) मोटेरा गाँव, जिला गांधीनगर; (अहमदाबाद) गुजरात

२. कमलेश फेशन स्टोर, रामनगर चौक, साबरमती, अहमदाबाद

३. गंगाराम गोपालदास दुकान नं. A ३७ जुमाणी (रेवड़ी) बजार, अहमदाबाद

४. लक्की जूस हाऊस, माणेकचौक, अहमदाबाद

५. जयभारत वस्त्र भण्डार, भावनगर

६. दयाल वस्त्र भण्डार, बस स्टेन्ड़ के पास, गोधरा

७. हरि वस्त्र भण्डार, हिम्मतनगर

८. लिबर्टी ग्लास स्टोर, पालनपुर

९. तोलाराम कुन्दोमल, सिद्धपुर

१०. न्यू ब्यूटी सेन्टर, बाला हनुमान, अहमदाबाद

११. हारीज तालुका खरीद-वेचाण संघ हारीज, जि.महेसाणा

१२. शंकरलाल हंसराज, सिंधी बाजार, डीसा

*